Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
ISSN No.2456-1665

वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. अभिमन्यु बिक्कड
ऐसोसिएट प्रोफ़ेसर,हिंदी विभाग,
राष्ट्रमाता इंदिरा गांधी महाविद्यालय,
जालना (महाराष्ट्र)
bikkad.abhimanyu@gmail.com

संत साहित्य का काल पंद्रहवीं शताब्दी है। संत शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से मानी जाती है। 'संत' शब्द का अर्थ वैरागी माना है। इसके संदर्भ में परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं - ''संत' शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत रूपी परम तत्त्व का अनुभव कर लिया हो और इस प्रकार अपने व्यक्तित्त्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो, जो सत स्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड़ सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो वह संत है।'' विनय मोहन के अनुसार इसका अर्थ आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है। परंतु हमारे अनुसार 'संत' शब्द सत् से बना है। कोई भी पुरुष सज्जन ईश्वरोन्मुख हो सकता है। तो किसीने इसका अर्थ संकुचित रूप में भक्त कहा है।

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ सगुण धारा तथा निर्गुण धारा है। सगुण के अंतर्गत रामभक्ति और कृष्णा भक्ति तथा निर्गुण के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा रही।

इस काल में राजनीतिक परिस्थिति अत्यंत अव्यस्थित रही। इस काल में शासक राज्य विस्तार के मोह में पड़े थे। इस साहित्य में जनता का राजनीति से विश्वास उठ चुका था। इस काल में राजनीति में कोई पवित्रता नहीं रही थी। इस राजनीति में छल, कपट, हिंसा, कूटनीति को उचित समझा था। इस काल में अधिकांश मुस्लिम शासकों ने धर्मप्रचार तलवार के बलपर किया है। मुस्लिम शासकों की हिंदुओं के देवदेवताओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रही। संत साहित्य में दूसरी ओर जनता का ध्यान समाज और धर्म संगठन की ओर गया। इस काल में हिंदू और मुस्लिम भेदों को मिटाने का प्रयास रहा है।

कुछ साहित्यकारों का मत है कि यदि मुसलमान शासक न आते तो हमारा साहित्य और भी शांती पूर्ण लिखा जाता। इस काल के साहित्य में समाज के वर्ग भेदों को मिटाने का प्रयास किया है। इस काल के संत साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही कि उन्होंने वर्ग भेद, दिखावटी, कुप्रवृत्तियों आदि का डटकर विरोध किया है।

संत कवियों ने कहा कि, 'हरि को भजे सो हरिका होई' इस काल में सामाजिक स्थिति अत्यंत सोचनीय थी।

विठ्ठल भक्ति संप्रदाय में मानसिक भक्ति और नामस्मरण को अधिक महत्त्व दिया हैं। इसमें प्रेमासक्ति और रहस्यमयता की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती है। ये प्रवृत्तियाँ संत साहित्य में दिखाई देती हैं। कहीं कहीं पर कबीर ने विठ्ठल का नाम आरध्य देव के रूप में बड़ी श्रद्धा से लिया है।

संत साहित्य पर सूफियों के मादकता का भी प्रभाव रहा है। संत कवियों ने सूफ़ियों के अनेक प्रतीक का अनुकरण किया है। शैली की दृष्टि से भी संत काव्य सूफ़ियों से प्रभावित रहा है।

संत काव्य का स्वरूप एवं महत्त्व :

संत काव्य श्रमसाध्य तथा कृत्रिम सौंदर्य नहीं है। वह जनजीवन में डूबी हुई अनुभूतियों से संपन्न है। संत काव्य पर अनेक संप्रदायों का प्रभाव रहा है, परंतु इसमें धर्म अथवा साधना की कोई व्याख्या नहीं है। इस काव्य में जन जीवन के सत्य को सीधी साधी भाषा में चित्रित किया है। संत साहित्य दोनों दृष्टियों से लोक पक्ष तथा काव्य वैभव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। संत साहित्य की पद्धति स्वतंत्र और साधना सामाजिक रही हैं। संत साहित्य में विचार साम्य दिखाई देता है।

सभी संत निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखते हैं। सूर और तुलसी के समान वे सगुण और निर्गुण के समन्वयवादी नहीं। इन्होंने ईश्वर के सगुण का विरोध किया। इसके संदर्भ में कबीर ने कहा -

दसरथ सुत तिहुं लोक बखान
रामनाम का मरम है आना।१

संतो का विश्वास है कि अवतार जन्म-मरण के बंधन में ग्रस्त है। वे भी परम ब्रह्मा की भक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सभी संतों ने निंदा की है और उन्हें माया ग्रस्त कहा हैं।

अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।२

संत कवियों ने गुरू को महत्त्व दिया है। इसके संदर्भ में कबीर ने कहा है-

गुरू गोविंद दोऊ खड़े काले लागूं पाइ।
बलिहारी गुरू आपने जिन गोविंद दियो बताइ।।३

संत कवियों का विश्वास है कि राम की कृपा तभी होती जब गुरू की कृपा होती है। इसका महत्त्व सगुण भक्त कवियों के समान है। परंतु अंतर इतना है कि संत कवि इसे ईश्वर मानते हैं। संत कवि गुरू को अधिक महत्त्व देते हैं।

संत कवियों ने जातिपाति का डटकर विरोध किया है।

जाति पांति पूछे नहिं कोई
हरि को भजे सो हरि का होई।४

संत कवियों ने जातिपाँति वर्गभेद को मिटा दिया है। कोई जाति के आधार पर ज्ञान के अभाव में भी ज्ञानी कहना यह उचित नहीं माना। कहना यह कि जाति के आधारपर ज्ञानी न होकर ज्ञान के आधारपर ही ज्ञानी होता है।

संत कवियों ने समाज़ में जो रूढ़ि परंपरा, मिथ्या आड़ंबरों, अंधविश्वास की कटु आलोचना की है। इन लोगों ने समाज में पायी जानेवाली कुप्रवृत्तियों का कड़ा विरोध किया है। संत कवियों ने मूर्तिपूजा, धर्म के नामपर की जानेवाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज़ हज़ आदि विधि-विधानों बाह्य आड़ंबरों, जाति-पाँति भेद आदि का डटकर विरोध किया है।

संत कवियों ने वैष्णव धर्म को छोड़कर अन्य सभी धर्मों की निंदा की है।

जैंसे-

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाला।
जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल।।
कांकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय।।
पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजैं पहार।
ताते वह चक्की भली पीस खाय संसार।।५

संत कवियों ने रहस्यवाद को भी महत्त्व दिया है। यह प्रवृत्ति विठ्ठल संप्रदाय से आयी है। प्रणयानुभूति के क्षेत्र में पहुँचकर खंड़न मंड़न की प्रवृत्ति को भूल जाते हैं।

संत काव्य में मुख्यत: अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई जिसे रहस्यवाद की संज्ञा दी गयी है। साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्मा है वही साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जलहि समाना, यह तत कहो गयानी।।६

संत कवियों का कहना यह कि भजन तथा नामस्मरण मन ही मन में होना चाहिए। ईश्वर प्राप्ति के लिए नामस्मरण को आवश्यक माना है। बड़े बड़े ग्रंथ पढ़ने से कोई पंड़ित नहीं होता। जो अक्षर को जानता है वही ज्ञानी होता है-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडिता भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम के पढ़ै सो पंडित होई।।७

संत साहित्य के सभी कवि पारिवारिक जीवन जीनेवाले थे। नाथपंथियों की तरह योगी नहीं थे। इनके वाणी में जीवनगत सर्वांगीणता है। संत साधना में वैयक्तिकता के बदले सामाजिकता अधिक रही है।

संत कवियों ने भाषा की ओर ध्यान दिया है। इस काल के कवियों ने मुक्त शैली का प्रयोग किया है। गीति काव्य में भी सभी तत्त्व मिलते हैं, जिसमें भावात्मकता, संगितात्मकता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इनकी वाणी में मिलती है। इन कवियों ने अपने साहित्य में साखी, दोहा, चौपाई की शैली का प्रयोग किया है। यह कवि अशिक्षित थे। अत: बोलचाल की भाषा में अपने मत को व्यक्त किया है। अत: इनकी भाषा खिचड़ी या सधुक्कड़ी हो गई है। इनकी भाषा में अवधी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, पूर्वी हिंदी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं के शब्दों का मिश्रण है।

संतकाव्य की प्रासंगिकता :

संत काव्य गुणवत्ता और परिणाम की दृष्टि से भारतीय साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह साहित्य वैश्विकरण की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है कि इस साहित्य में मानवजाति के कल्याण का विचार सबसे अधिक किया है। इस साहित्य में भारतीय वाङ्मय की दृष्टि से उच्च कोटि के पद संकलित है। इस साहित्य में भक्ति की प्रधानता होने के कारण आज की जीवन शैली के लिए यह महत्त्वपूर्ण है। भक्ति की

प्रासंगिकता वैज्ञानिक युग में सबसे अधिक होने के कारण भक्तिकालीन पद शाश्वत माने जाते हैं। संत साहित्य में समन्वयवादिता होने के कारण सामाजिक समता की दृष्टि से इनका महत्त्व दिखाई देता है।

संत साहित्य के आधारपर समाज में वैचारिक क्रांति की स्थापना की जाती है। नैतिकता, सदाचार आदि मानवीय मूल्यों का इसमें समावेश होने के कारण समाज को मानवतावादी बनाने में इस साहित्य का सबसे अधिक महत्त्व है।

संत साहित्य का प्रयोज़न स्वांतायसुखाय के बदले सर्वांतसुखाय होने के कारण यह साहित्य लोकभाषा में पद साहित्य होने के कारण जनसामान्य से यह साहित्य है। दुनिया में इस साहित्य के आधारपर शांति की स्थापना की जा सकती है। लोकमंगल की दृष्टि से इस साहित्य की प्रासंगिकता सबसे अधिक है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संत साहित्य के आधार पर समन्वयवाद, भक्तिभावना, मानवतावाद और जीवनमूल्यों का प्रचार-प्रसार में कर सकते हैं।

संदर्भ :

१.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१५२
२.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१३८
३.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१३८
४.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१३८
५.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१३९
६.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१५५
७.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार वर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.	१९९४-१४०